पूर्वोत्तर राज्यों में संतुलित विकास की चुनौती

पूनम पाण्डेय

हिमालयी भूभाग भूस्खलन और भूकंप के लिए अतिसंवेदनशील क्षेत्र माना जाता है। क्योंकि हिमालय का निर्माण भारतीय और यूरेशियाई प्लेटों के टकराने से हुआ है। भारतीय प्लेट की उत्तर दिशा की ओर गति के कारण चट्टानों पर लगातार दबाव बना रहता है, जिससे वे कमज़ोर हो जाती हैं और भूस्खलन एवं भूकंप की संभावना बढ़ जाती है। इस परिदृश्य के साथ तीव्र ढलान, ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति, उच्च भूकंपीय भेद्यता और वर्षा का मेल इस क्षेत्र को विश्व का सबसे अधिक आपदा वाला क्षेत्र बना देता है। पहाड़ी क्षेत्रों में विकास का असंगत मॉडल आपदा को स्वयं आमंत्रित करता है, जहाँ जंगलों के विनाश और नदियों पर बाँध निर्माण जैसी कार्रवाइयों के साथ बड़ी जलविद्युत परियोजनाओं को आगे बढ़ाया जा रहा है।

पूर्वोत्तर क्षेत्र के आठ राज्य आदिकाल से भारत के अखंड और अभिन्न अंग रहे हैं। ये राज्य भारत के साथ-साथ एशिया के लिए भी सामरिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। इस क्षेत्र के चारों तरफ बांग्लादेश, म्यांमार, तिब्बत, चीन आदि जैसे कई देश हैं। पूर्वोत्तर क्षेत्र का क्षेत्रफल 2,62,184 वर्ग किलोमीटर है, जो भारत के क्षेत्रफल का लगभग 8% है। यह क्षेत्र, भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के बीच का सेतु होने के साथ-साथ चीन के दक्षिणी भाग सहित दक्षिण पूर्व एशिया की जीवंत अर्थव्यवस्था के लिए भारत का प्रवेश द्वार भी है। प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से भी बहुत मूल्यवान है। ऐसे में इन संसाधनों का दोहन राष्ट्रीय विकास के लिए किया जा सकता है।

प्रभावित होता हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र

आज विकास के नाम पर हो रही मानवीय गतिविधियों और हिमालयी जैव-संपदा तथा उसके संरक्षण के बीच संतुलन की आवश्यकता बढ़ गई है। ऐसे में हिमालय के पारिस्थितिकी तंत्र पर विभिन्न विकासात्मक गतिविधियों के समग्र प्रभाव का आंकलन बेहद जरूरी हो गया है। हिमालय क्षेत्र में सतत विकास और सामाजिक उत्थान के लिए हिम, नदियों और जंगलों का संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन से हिमालयी क्षेत्र के तापमान में लगातार वृद्धि, वर्षा के पैटर्न में बदलाव और कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर में बढ़ोतरी जैसी घटनाएं देखी जा रही हैं। मैदानी क्षेत्रों में मानवीय गतिविधियों के कारण होने वाला प्रदूषण जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के साथ मिलकर हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित कर रहा है। इस कारण हिमालयी क्षेत्रों में अनियमित हिमपात, दिन एवं रात के तापमान में वृद्धि और हिमनदों के सिकुड़ने के मामले गंभीर रूप से उभर रहे हैं। ये कारक न केवल हिमालयी पौधों की प्रजातियों के पुनर्जनन को प्रभावित करते हैं, बल्कि ऊंचाई वाले क्षेत्रों में वृक्ष-रेखा और टिम्बर-लाइन के अचानक बदलाव का कारण भी बनते हैं। वृक्ष-रेखा या ट्री-लाइन, किसी पर्यावास (प्राकृतिक वास) की वह सीमा होती है जहाँ तक वृक्ष उग पाने में सक्षम होते हैं। जबकि, टिम्बर-लाइन या वृक्ष-विकास रेखा उस भौगोलिक सीमा को कहते हैं, जिसके आगे पेड़ नहीं उग सकते। इसलिए यह जरूरी हो गया है

कि हिमालयी और गैर-हिमालयी क्षेत्रों में विभिन्न अनुसंधान संस्थानों के बीच सहयोग और स्थानीय लोगों से मिलकर हिमालयी जैव-संपदा के संरक्षण के लिए एक प्रभावी कार्य योजना तैयार की जाए।

हाल ही में हिमाचल प्रदेश में हुई अत्यंत भारी वर्षा से पहाड़ी ढलान अस्थिर हो गए जिससे आसपास के रिहायशी क्षेत्रों में बाढ़ आने की संभावना बढ़ गई। अस्थिर ढलानों से नीचे खिसकती भारी चट्टानें स्थानीय निवासियों और पर्यटकों के लिए चिंता का कारण बनी हैं। हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड जैसे हिमालयी राज्य अपनी पारिस्थितिकी के नुकसान के कारण अपरिवर्तनीय क्षय के चरण में प्रवेश कर चुके हैं जिससे यहाँ भूस्खलन की घटनाएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। हिमालयी भूभाग भूस्खलन और भूकंप के लिये अतिसंवेदनशील क्षेत्र माना जाता है। क्योंकि हिमालय का निर्माण भारतीय और यूरेशियाई प्लेटों के टकराने से हुआ है। भारतीय प्लेट की उत्तर दिशा की ओर गति के कारण चट्टानों पर लगातार दबाव बना रहता है, जिससे वे कमज़ोर हो जाती हैं और भूस्खलन एवं भूकंप की संभावना बढ़ जाती है। इस परिदृश्य के साथ तीव्र ढलान, ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति, उच्च भूकंपीय भेद्यता और वर्षा का मेल इस क्षेत्र को विश्व का सबसे अधिक आपदा वाला क्षेत्र बना देता है। पहाड़ी क्षेत्रों में विकास का असंगत मॉडल आपदा को स्वयं आमंत्रित करता है, जहाँ जंगलों के विनाश और नदियों पर बाँध निर्माण जैसी कार्रवाइयों के साथ बड़ी जलविद्युत परियोजनाओं को आगे बढ़ाया जा रहा है।

पूर्वोत्तर राज्यों में विकास के कारण बढ़ती मानवीय गतिविधियां।

पूर्वोत्तर के हालात

एक तरफ भारत के तमाम राज्य 46 डिग्री से ज्यादा तापमान और जानलेवा गर्मी से जूझ रहे हैं, वहीं पूर्वोत्तर के हालात इसके ठीक उलट हैं। पूर्वोत्तर इलाके की भौगोलिक बसावट के चलते असम और अरुणाचल प्रदेश जैसे राज्यों में बाढ़ की समस्या तो पहले से ही रही है। खासकर अरुणाचल की पहाड़ियों और उससे सटे तिब्बत से निकलने वाली नदियों का पानी हल्की बरसात में ही असम के कई हिस्सों को डुबो देता है। यही वजह है कि राज्य में हर साल तीन से चार बार बाढ़ आती है, लेकिन हाल के वर्षों में बाढ़ के पहले और दूसरे दौर के बीच समय का अंतर घट गया है। मौसमविज्ञानी इसके लिए कई वजहों को जिम्मेदार मानते हैं। हालांकि बारिश के पैटर्न में होने वाले बदलावों के लिए ग्लोबल वार्मिंग को ही सबसे बड़ी वजह बताया जा रहा है।

मौसम विभाग की ओर से 1901 से 2015 यानी 115 साल के आंकड़ों के अध्ययन के बाद करीब चार साल पहले प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया था कि इस इलाके में बारिश के मौसम में अत्यधिक भारी बारिश होने की घटनाएं भी बढ़ी हैं। इसके अलावा मानसून से पहले और बाद की बारिश भी तेज हुई है। इसी वजह से बाढ़ का सिलसिला तेज हुआ है। मानसून के दौरान अनियमित बारिश की वजह से असम की नदियां अपना मार्ग परिवर्तन करने लगी हैं। इसका असर इंसानी बस्तियों पर पड़ने लगा है और हर साल हजारों की तादाद में लोगों का विस्थापन हो रहा है। बीते कुछ वर्षों के दौरान विस्थापन की यह प्रक्रिया तेज हुई है। मौसम वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि पूर्वोत्तर में हिमालय की पहाड़ियां अपेक्षाकृत युवा हैं। ग्लोबल वार्मिंग की वजह से इन पहाड़ियों पर हिमनदों के पिघलने की रफ्तार बढ़ी है। जिससे यह मामूली बारिश के दौरान भी भयावह रूप ले लेती हैं।

अमेरिका की मैरीलैंड यूनिवर्सिटी के ग्लोबल फारेस्ट वाच की ओर से जारी एक ताजा रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्ष 2001 से 2021 के बीच भारत में सबसे ज्यादा पूर्वोत्तर इलाकों में ही जंगल के क्षेत्रफल कम हुए हैं। पूरे देश में घटे वन क्षेत्र का 76 फीसदी इसी इलाके में था। इनमें अकेले असम का हिस्सा ही 14.1 प्रतिशत था। 2018 में जलवायु संवेदनशीलता की आंकलन रिपोर्ट में कहा गया था कि असम और मिजोरम राज्य जलवायु परिवर्तन के प्रति बेहद संवेदनशील हैं।

जलवायु परिवर्तन का इलाके की जैव विविधता पर असर साफ नजर आने लगा है। अरुणाचल प्रदेश के अपर सियांग जिले में अब जाड़े के दिनों में भी आम फलने लगे हैं। यह एक नई बात है। मौसम के बदलते मिजाज की वजह से दुर्लभ किस्म की कई दुर्लभ वनस्पतियों का अस्तित्व खत्म होने की कगार पर पहुंच गया है।

पूर्वोत्तर राज्यों में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव।

बाढ़ से खेती का कैसे हो बचाव

ग्लोबल वार्मिंग की वजह से पूर्वोत्तर राज्य असम में अब साल में कई बार बाढ़ आने लगी है। इससे खेतों में लगी फसलें नष्ट हो जाती हैं। राज्य में खेती ही आजीविका का प्रमुख साधन है और यहां धान की पैदावार सबसे ज्यादा होती है। बाढ़ किसानों की साल भर की मेहनत अपने साथ बहा ले जाती है। अब असम कृषि विश्वविद्यालय ने धान की ऐसी किस्में विकसित की हैं जिन पर बाढ़ का खास असर नहीं होगा। भले यह लंबे समय तक पानी में डूबी रहें। असम कृषि विश्वविद्यालय ने धान की बहादुर सब-1 और रंजीत सब-1 नामक ऐसी दो नई किस्में विकसित की हैं जो लंबे समय तक पानी में डूबे रहने के बावजूद खराब नहीं होती। तीन साल पहले गांव के कुछ लोगों ने परीक्षण के तौर पर धान की इन नई किस्मों की खेती की थी। नतीजे बेहतर आने के बाद अब ज्यादा से ज्यादा लोग इनको अपना रहे हैं। दिलचस्प बात यह है कि इन नई किस्मों से कम लागत में पहले के मुकाबले उत्पादन कई गुना बढ़ गया है। गांव के किसानों का कहना है कि पहले 20 किलो धान की रोपाई करते थे तो चार-पांच सौ किलो फसल पैदा होती थी। लेकिन अब एक किलो धान की रोपाई से ही इतनी उपज मिल जाती है। दूसरा फायदा यह है कि बाढ़ के दौरान दो-दो सप्ताह तक खेतों के पानी में डूबे रहने के बावजूद इस फसल को कोई नुकसान नहीं होता।

असम की सबसे प्रमुख नदियों ब्रह्मपुत्र और बराक की कम से कम पचास सहायक नदियां हैं। इनकी वजह से यह राज्य बाढ़ के प्रति बेहद संवेदनशील है। मौसम की पहली बरसात के साथ ही ऊपरी असम के तमाम इलाके इसकी चपेट में आ जाते हैं। इसके साथ ही कई इलाकों में भूमि कटाव का खतरा भी बढ़ जाता है। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग के आंकड़ों के मुताबिक, राज्य का 30 लाख हेक्टेयर से ज्यादा अर्थात करीब 40 प्रतिशत इलाका बाढ़ के प्रति बेहद संवेदनशील है। इनमें खेती वाले 4.75 लाख हेक्टेयर इलाके भी शामिल हैं। राज्य में 28 लाख हेक्टेयर जमीन पर खेती होती है। इन आंकडों से साफ है कि खेती लायक जमीन का 17 फीसदी हिस्सा हर साल कई बार बाढ़ में डूब जाता है। इससे खेती पर निर्भर किसानों को भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। धान की पारंपरिक खेती करने वालों को फसलों के नुकसान और उत्पादन में गिरावट जैसी समस्याओं से जूझना पड़ता है। राज्य में करीब 28 लाख परिवार आजीविका के लिए पूरी तरह से खेती पर ही निर्भर हैं।

पूर्वोत्तर राज्यों में ऊर्जा परियोजनाओं का विकास।

जलवायु परिवर्तन का इलाके की जैव विविधता पर असर साफ नजर आने लगा है। अरुणाचल प्रदेश के अपर सियांग जिले में अब जाड़े के दिनों में भी आम फलने लगे हैं। यह एक नई बात है। मौसम के बदलते मिजाज की वजह से दुर्लभ किस्म की कई दुर्लभ वनस्पतियों का अस्तित्व खत्म होने की कगार पर पहुंच गया है।

इतिहास गवाह है

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र का एक लंबा और गरिमामई इतिहास रहा है। आबादी की दृष्टि से असम पूर्वोत्तर का सबसे बड़ा राज्य है। इस क्षेत्र की 68% से अधिक आबादी असम में बसी है। असम को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में मुख्य रूप से पहाड़ी इलाके शामिल हैं। इनमें बड़ी संख्या में आदिवासी बसे हैं। असम में आदिवासियों की आबादी कुल जनसंख्या का 12.4% है तो मिजोरम में यह 94% है। पूर्वोत्तर क्षेत्र में 160 से अधिक अनुसूचित जनजातियां और 400 से अधिक अन्य आदिवासी और उप-आदिवासी समुदाय और समूह हैं। क्षेत्र की 80% से अधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है।

हालांकि, बाढ़ असम के लिए नई नहीं है। इतिहासकारों ने अहोम साम्राज्य के शासनकाल के दौरान भी हर साल आने वाली बाढ़ का जिक्र किया है। पहले के लोगों ने इससे बचने के लिए प्राकृतिक तरीके अपनाए थे। इसलिए बाढ़ की हालत में जान-माल का नुकसान कम से कम होता था। लेकिन अब साल-दर-साल यह समस्या गंभीर होती जा रही है। भारत, तिब्बत, भूटान और बांग्लादेश यानी चार देशों से गुजरने वाली ब्रह्मपुत्र नदी असम को दो हिस्सों में बांटती है। इसकी दर्जनों सहायक नदियां भी हैं। तिब्बत से निकलने वाली यह नदी अपने साथ भारी मात्रा में गाद लेकर आती है। वह गाद धीरे-धीरे असम के मैदानी इलाकों में जमा होता रहता है। इससे नदी की गहराई कम हो जाती है। इससे पानी बढ़ने पर बाढ़ और तटकटाव की गंभीर समस्या पैदा हो जाती है।

विशेषज्ञों का कहना है कि इंसानी गतिविधियों ने भी परिस्थिति को और जटिल बना दिया है। बीते करीब छह दशकों के दौरान असम सरकार ने ब्रह्मपुत्र के किनारे तटबंध बनाने पर तीस हजार करोड़ रुपए खर्च किए हैं। विशेषज्ञों की राय में ग्लोबल वार्मिंग की वजह से तिब्बत के हिमनदों के तेजी से पिघलने और उसके तुरंत बाद मानसून सीजन शुरू होने की वजह से ब्रह्मपुत्र और दूसरी नदियों का पानी काफी तेज गति से असम के मैदानी इलाकों में पहुंचता है। पर्यावरणविद् अरूप कुमार ने भी अपनी पुस्तक द ब्रह्मपुत्र में लिखा है कि पहाड़ियों से आने वाला पानी ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियों का जलस्तर अचानक बढ़ा देता है। यही वजह है कि राज्य में सालाना बाढ़ की समस्या गंभीर हो रही है। दूसरे इलाके में जल्दी-जल्दी आने वाले भूकंप समस्या को और गंभीर बना देते हैं।

जल की उपयोगिता

काया को निरोगी रखने वाले इस जल की उपयोगिता को हमारे ऋषि-मुनियों ने हजारों साल पहले समझ लिया था। इसकी महिमा वरदान बनी रहे, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मृत्यु शय्या पर लेटे व्यक्ति को गंगाजल पिलाने

का नियम बनाया गया। हालांकि अब जागरूकता के अभाव में इसे एक परंपरा का स्वरूप दे दिया गया है। हिमालय की कोख से गंगा निकलती हो या पिंडर, इनका पानी इसलिए शुद्धतम माना जाता है क्योंकि इनमें गंधक जैसे खनिजों की मात्रा सर्वाधिक है। यही कारण है कि इसका पानी सदा पीने लायक बना रहता है। इनका पानी खराब नहीं होने के वैज्ञानिक कारण भी हैं। खासतौर से गंगा के पानी में 'बैक्टिरियोफेज' नामक जीवाणु पाया जाता है, जो पानी के अंदर रासायनिक क्रियाओं से उत्पन्न होने वाले अवांछनीय पदार्थों को निगलता रहता है। नतीजतन जल की शुद्धता बनी रहती है। इनके अलावा भी कुछ भूगर्भीय रासायनिक क्रियाएं भी इस पानी को शुद्ध बनाए रखने का काम करती हैं। ये पानी में हानिकारक कीटों को नहीं पनपने देती हैं। बावजूद इसके यह पानी हिमालय से उतर कर नीचे आता है तो नदियों में बहाई जा रही गंदगी के चलते दूषित होने लगता है।

उत्तराखंड में गंगा और उसकी सहायक नदियों पर एक लाख तीस हजार करोड़ रुपए की जल विद्युत परियोजनाएं निर्माणाधीन हैं। दूसरी तरफ भारत की जनसंख्या भी लगभग 1.58% की दर से बढ़ रही है। इतनी तेजी से जनसंख्या वृद्धि के कारण, भारत में बिजली की खपत बढ़ रही है। जीवाश्म ईंधन के समाप्त होने के कारण, भारत को भविष्य में ऊर्जा की कमी का सामना करना पड़ सकता है। ऐसे में जल विद्युत परियोजनाएं जरूरी हो गई हैं।

ऊर्जा की बढ़ती मांग

भारत की बड़ी आबादी और उच्च आर्थिक विकास दर ऊर्जा की उच्च मांग का कारण बनी है। इस मांग ने भारत को अपनी सीमाओं के बाहर ऊर्जा की तलाश करने के लिए प्रेरित किया है। वर्तमान में, भारत अपनी कुल ऊर्जा जरूरतों का लगभग 33% आयात करता है। वर्तमान में, भारत और अन्य बड़े देशों में, पेट्रोलियम, तेल और कोयले जैसे जीवाश्म ईंधन की बहुत अधिक मांग है। कहा जा रहा है कि भारत के लिए इसका समाधान खोजना बेहद जरूरी है। लगातार बदलती दुनिया के साथ, अक्षय ऊर्जा स्रोतों को खोजना महत्वपूर्ण है। अक्षय ऊर्जा संसाधन और नवाचार दुनिया के विभिन्न ऊर्जा मुद्दों और जरूरतों को हल करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। पवन ऊर्जा, सौर ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, महासागर ऊर्जा, बायोमास ऊर्जा और ईंधन सेल प्रोद्योगिकी जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग भारत की ऊर्जा की कमी को हल करने के लिए किया जा सकता है। भारत की तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण, आने वाले समय में देश आज जितनी ऊर्जा की खपत होती है, उससे लगभग 3-4 गुना अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होगी। भारत की वर्तमान ऊर्जा व्यवस्था में, भारत की प्राथमिक ऊर्जा खपत में अक्षय ऊर्जा का योगदान लगभग 33% है।

भारत की ऊर्जा समस्या का सबसे अच्छा समाधान जल विद्युत और लघु जल विद्युत संयंत्रों का विकास है। इस सुझाव का एक कारण यह है कि भारत के पास ऐसे जलविद्युत संसाधन हैं जो व्यवहार्य और आर्थिक रूप से दोहन योग्य हैं। ऐसे में भारत खुद को एक उच्च जलविद्युत क्षमता वाला देश बना सकता है। भूटान में तेजी से बहने वाली नदियाँ अनुमानित रूप से 30,000 मेगावाट जलविद्युत उत्पन्न करती हैं। भूटान में कुरी छू नदी भारत के लिए उपलब्ध संसाधनों का एक प्रमुख उदाहरण है। वर्तमान में, इससे उत्पन्न केवल 1488 मेगावाट जलविद्युत का वास्तव में उपयोग किया जाता है। इस 1488 मेगावाट जलविद्युत में से लगभग 75% बिजली भारत को निर्यात की जाती है। भारत और भूटान के बीच जारी साझेदारी के कारण, भविष्य में और अधिक परियोजनाओं को निर्मित किये जाने की योजना है। भूटान और भारत की सरकारें कुल दस जलविद्युत परियोजनाओं के निर्माण की योजना बना रही हैं।

असम में ग्लोबल वार्मिंग के कारण बाढ़ का एक दृश्य

निष्कर्ष

भारत में जलविद्युत की अपार संभावनाएं हैं। दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में जल विद्युत की अपार संभावनाएं हैं। लेकिन इसके साथ एक और चुनौती उबड़-खाबड़ तथा दुर्गम भू-भाग की है। यद्यपि जलविद्युत परियोजनाओं के विस्तार से भारतीय आर्थिक विकास में मदद मिलती है, लेकिन वे पर्यावरणीय क्षति तथा भूमि और जल संसाधनों के पुनः आवंटन से संबंधित मुद्दे को भी जन्म देती हैं। इसके तर्क यह हैं कि जलविद्युत परियोजना के विकास के लिए पहाड़ी नदियों का उपयोग किया जाता है, जिससे दो बड़ी समस्याएं आती हैं। एक तो पहाड़ी नदियों की पारिस्थितिक स्थिति बदल जाती है, जो दूसरी अन्य समस्या का कारण बनती है। दूसरे मूल आवास के लिए लोगों को बहुत कम जगह बचती है। उदाहरण के लिए, हिमाचल प्रदेश में अधिकांश जलविद्युत परियोजनाएं ''रन-ऑफ-रिवर'' हैं जो प्राकृतिक नदी के प्रवाह को मूल नदी प्रवाह के समानांतर चलने वाली सुरंगों में बदल देती हैं। नदियों के प्रवाह के इस विभाजन और मोड़ के कारण नदी का बड़ा हिस्सा सूख जाता है। जो भी हो, जलविद्युत परियोजनाओं का भविष्य तय करते समय एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इसका आवासीय क्षेत्रों और पर्यावरण पर न्यूनतम कुप्रभाव पड़े।

सपंर्क करें:

पूनम पाण्डेय
C/o श्री वी.के. पाण्डेय,
चंडिका धाम कालोनी, रिंग रोड़ के पास,
शिवपुर (उत्तर प्रदेश)
मोबाइल - 9450438017
ई-मेलः- poonamvkp@gmail.com